OPEN ACCESS

Ind. Jr. of Mod. Res. and Rev | *PEER-REVIEWED JOURNAL* | *Volume 4 Issue 6 [Jun] Year 2026*

Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN:2584-184X

Research Article

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति: एक ऐतिहासिक अध्ययन (1765–1947)

Rukhsana Praveen
Research Scholar, Department of History, Faculty of Social Science and Humanities
Radha Govind University, Ramgarh, Jharkhand, India

Corresponding Author: *Rukhsana Praveen

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.22935230

सारांश

प्रस्तुत शोध में औपनिवेशिक शासन के दौरान झारखण्ड की महिलाओं के जीवन में आए सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है। झारखण्ड की सामाजिक संरचना जनजातीय एवं गैर-जनजातीय समुदायों की विविधता से निर्मित थी, जिसके कारण महिलाओं की स्थिति भी एकरूप नहीं थी। आदिवासी महिलाओं को कृषि, वन-आधारित गतिविधियों तथा सामुदायिक जीवन में अपेक्षाकृत अधिक सहभागिता प्राप्त थी, जबकि गैर-आदिवासी समाज में जाति, पितृसत्ता और सामाजिक रूढ़ियों का प्रभाव अधिक दिखाई देता था। औपनिवेशिक भूमि एवं राजस्व नीतियों ने पारंपरिक सामुदायिक भूमि व्यवस्था को प्रभावित किया। भूमि से बेदखली, बढ़ती आर्थिक निर्भरता तथा वन संसाधनों पर सरकारी नियंत्रण का महिलाओं के दैनिक जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। कृषि, पशुपालन, वनोपज संग्रह और घरेलू उत्पादन में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था, किंतु उनके श्रम को औपचारिक आर्थिक अभिलेखों में पर्याप्त मान्यता नहीं मिली। खनन, औद्योगीकरण और मजदूरी आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार ने महिलाओं के लिए रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए, लेकिन कम मजदूरी, कठिन कार्य परिस्थितियों और दोहरे श्रम-बोझ जैसी समस्याएँ भी सामने आईं। विस्थापन और प्रवासन ने उनकी सामाजिक एवं आर्थिक असुरक्षा को बढ़ाया। मिशनरी शिक्षा और आधुनिक सामाजिक चेतना ने कुछ क्षेत्रों में महिला शिक्षा तथा जागरूकता के विकास में योगदान दिया। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि औपनिवेशिक शासन ने झारखण्ड की महिलाओं के जीवन में अवसरों और चुनौतियों - दोनों को जन्म दिया। महिलाओं की भूमिका को समझने के लिए इतिहास का अध्ययन लैंगिक, सामाजिक तथा स्थानीय दृष्टिकोण से किया जाना आवश्यक है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2584-184X
- **Received:** 07-05-2026
- **Accepted:** 13-06-2026
- **Published:** 22-06-2026
- **IJCRM:**4(6); 2026: 298-308
- **©2026, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

Praveen R. औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति: एक ऐतिहासिक अध्ययन **(1765–1947).** Indian J Mod Res Rev. 2026;4(6):298-308.

Access this Article Online

www.mrrjournal.in

मुख्य शब्द: झारखण्ड, औपनिवेशिक काल, महिलाएँ, जनजातीय समाज, महिला श्रम, सामाजिक परिवर्तन।

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

1. प्रस्तावना

झारखण्ड भारतीय उपमहाद्वीप का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक क्षेत्र रहा है। वर्तमान झारखण्ड राज्य का अधिकांश भाग छोटानागपुर पठार और संथाल परगना क्षेत्र में विस्तृत है। घने वनों, खनिज संसाधनों, पर्वतीय भू-आकृतियों तथा विविध जनजातीय समुदायों से युक्त इस क्षेत्र की अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान रही है। यद्यपि आधुनिक झारखण्ड राज्य का गठन 15 नवम्बर 2000 को हुआ, किंतु झारखण्ड एक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में बहुत पहले से अस्तित्व में था। यहाँ की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था मुख्यतः भूमि, जंगल और सामुदायिक संसाधनों से घनिष्ठ रूप से जुड़ी थी। इसलिए झारखण्ड के इतिहास के अध्ययन में महिलाओं की भूमिका को समझना अत्यंत आवश्यक है (सिंह एट अल., 1985)।

झारखण्ड की सामाजिक संरचना अत्यंत विविधतापूर्ण रही है। यहाँ मुंडा, उराँव, संथाल, हो, खड़िया, बिरहोर, असुर सहित अनेक जनजातीय समुदायों के साथ सदान एवं अन्य गैर-जनजातीय समुदाय निवास करते रहे हैं। इन समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषाएँ, सांस्कृतिक परंपराएँ और सामाजिक संस्थाएँ थीं। सामुदायिक जीवन, भूमि और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग स्थानीय परंपराओं के आधार पर किया जाता था। महिलाओं की भूमिका केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं थी, बल्कि वे कृषि, वन-आधारित गतिविधियों, पशुपालन तथा सामुदायिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं (रॉय एट अल., 1912)।

महिलाएँ कृषि कार्यों में बीज चयन, रोपाई, निराई और कटाई जैसे कार्यों में योगदान देती थीं। इसके अतिरिक्त वे जंगलों से लकड़ी, फल, कंद-मूल तथा अन्य उपयोगी उत्पादों का संग्रह करती थीं। इस व्यापक आर्थिक योगदान के बावजूद महिलाओं की सामाजिक स्थिति सभी समुदायों में समान नहीं थी। संपत्ति, निर्णय लेने की शक्ति और सामाजिक अधिकारों के मामले में विभिन्न समुदायों के बीच पर्याप्त अंतर मौजूद था (दास एट अल., 1991)।

वर्ष 1765 के बाद पूर्वी भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की राजनीतिक और राजस्व संबंधी शक्ति के विस्तार के साथ झारखण्ड क्षेत्र पर औपनिवेशिक प्रभाव क्रमशः बढ़ने लगा। ब्रिटिश शासन का उद्देश्य प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित करने के साथ भूमि, जंगल और खनिज संसाधनों का आर्थिक दोहन करना था। भूमि संबंधी नीतियों, राजस्व व्यवस्था तथा वन कानूनों ने पारंपरिक सामुदायिक अधिकारों और स्थानीय संस्थाओं को प्रभावित किया। इन परिवर्तनों का प्रभाव महिलाओं के जीवन पर विशेष रूप से पड़ा, क्योंकि उनकी दैनिक आर्थिक गतिविधियाँ कृषि और वन संसाधनों से गहराई से जुड़ी हुई थीं (गुहा एट अल., 1963)।

औपनिवेशिक शासन के दौरान भूमि पर बढ़ते नियंत्रण, आर्थिक कठिनाइयों और पारंपरिक आजीविका के साधनों में कमी के कारण अनेक परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर हुई। महिलाओं को परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि और घरेलू कार्यों के अतिरिक्त अन्य आर्थिक गतिविधियों में भी भाग लेना पड़ा। उनके श्रम का बोझ बढ़ा तथा अनेक क्षेत्रों में मजदूरी आधारित रोजगार और प्रवासन की प्रवृत्ति विकसित हुई (सिन्हा एट अल., 1983)। खनन, उद्योग और परिवहन के विस्तार ने झारखण्ड की अर्थव्यवस्था में नए परिवर्तन उत्पन्न किए। कोयला तथा अन्य खनिज संसाधनों के दोहन के साथ महिला श्रम का भी विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग बढ़ा। रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए, किंतु कम मजदूरी, कठिन कार्य परिस्थितियाँ, स्वास्थ्य संबंधी जोखिम तथा विस्थापन जैसी समस्याएँ भी सामने आईं। महिलाओं के इस योगदान को औपनिवेशिक आर्थिक इतिहास में अक्सर पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया (सेठी एट अल., 1996) ।

इस विषय का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पारंपरिक औपनिवेशिक इतिहास मुख्यतः प्रशासन, भूमि व्यवस्था और राजनीतिक आंदोलनों पर केंद्रित रहा है। महिलाओं की कृषि, पारिवारिक अर्थव्यवस्था, वन-आधारित जीवन तथा सामाजिक आंदोलनों में भूमिका को अपेक्षाकृत कम स्थान मिला है। महिलाओं के अनुभवों को केंद्र में रखकर इतिहास का अध्ययन सामाजिक परिवर्तन की उपेक्षित परतों को समझने में सहायता करता है (चक्रवर्ती एट अल., 2003)। वर्तमान संदर्भ में भी यह विषय अत्यंत प्रासंगिक है। झारखण्ड आज भी भूमि, जंगल, खनिज संसाधनों, विस्थापन, महिला श्रम और जनजातीय अधिकारों से जुड़ी चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन समस्याओं की ऐतिहासिक जड़ों को समझने के लिए औपनिवेशिक काल का अध्ययन आवश्यक है। अतः 1765 से 1947 तक झारखण्ड की महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन क्षेत्रीय इतिहास, महिला इतिहास और जनजातीय इतिहास के अंतर्संबंधों को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

2. अध्ययन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

2.1 झारखण्ड में औपनिवेशिक शासन की स्थापना

झारखण्ड का औपनिवेशिक इतिहास ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के राजनीतिक एवं आर्थिक विस्तार से जुड़ा हुआ है। वर्तमान झारखण्ड का अधिकांश क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से छोटानागपुर और संथाल परगना का हिस्सा रहा है। वर्ष 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त होने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी को व्यापक राजस्व अधिकार प्राप्त हुए। यद्यपि छोटानागपुर के दुर्गम एवं जनजातीय क्षेत्रों पर तत्काल पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं हो सका, फिर भी इसके बाद ब्रिटिश राजनीतिक और आर्थिक हस्तक्षेप क्रमशः बढ़ता गया (सिंह एट अल., 1985)। ब्रिटिश शासन का प्रमुख उद्देश्य प्रशासनिक नियंत्रण के साथ भूमि और प्राकृतिक संसाधनों से राजस्व प्राप्त करना था। झारखण्ड की पारंपरिक भूमि व्यवस्था स्थानीय समुदायों और जनजातीय संस्थाओं पर आधारित थी। मुंडा समाज की खूंटकट्टी व्यवस्था सहित विभिन्न समुदायों में भूमि उपयोग के अपने स्थानीय नियम थे। औपनिवेशिक प्रशासन ने इन व्यवस्थाओं को राजस्व और कानूनी ढाँचे के अंतर्गत लाने का प्रयास किया, जिससे पारंपरिक सामुदायिक अधिकार प्रभावित हुए (दास एट अल., 1991) ।

राजस्व नीतियों के कारण भूमि को आर्थिक संसाधन के रूप में अधिक महत्व दिया गया। बढ़ते लगान, ऋणग्रस्तता तथा बाहरी जमींदारों और साहूकारों के प्रभाव से अनेक किसानों और जनजातीय समुदायों को भूमि संबंधी असुरक्षा का सामना करना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय समाज में असंतोष बढ़ा और भूमि हस्तांतरण एक गंभीर समस्या बन गया (गुहा एट अल., 1963)। इसी पृष्ठभूमि में कोल विद्रोह, संथाल विद्रोह और मुंडा आंदोलनों जैसे प्रतिरोध विकसित हुए। ये संघर्ष केवल राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध नहीं, बल्कि भूमि, जंगल और पारंपरिक अधिकारों की रक्षा से भी जुड़े थे (महतो एट

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अल., 2001)। औपनिवेशिक प्रशासन ने न्यायिक, पुलिस और राजस्व संस्थाओं का विस्तार किया, जिससे स्थानीय शासन व्यवस्था में परिवर्तन आया। वन क्षेत्रों पर राज्य नियंत्रण बढ़ने से स्थानीय आजीविका भी प्रभावित हुई। इसका विशेष प्रभाव महिलाओं पर पड़ा, क्योंकि वे जलावन, खाद्य सामग्री, चारा तथा अन्य वन उत्पादों के संग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं (अग्रवाल एट अल., 1994)।

2.2 झारखण्ड का सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप

झारखण्ड का सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप इसकी जनजातीय विविधता, प्राकृतिक पर्यावरण तथा सामुदायिक जीवन की परंपराओं से निर्मित हुआ है। यहाँ मुंडा, उराँव, संथाल, हो, खड़िया, असुर, बिरहोर सहित अनेक जनजातीय समुदाय निवास करते रहे हैं। इनके अतिरिक्त सदान तथा अन्य गैर-जनजातीय समुदायों ने भी क्षेत्र की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना को प्रभावित किया है। विभिन्न समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषाएँ, धार्मिक विश्वास, सांस्कृतिक परंपराएँ तथा सामाजिक संस्थाएँ थीं। इसलिए झारखण्ड को एक समान सामाजिक इकाई के बजाय विविध समुदायों और ऐतिहासिक अनुभवों के समन्वित क्षेत्र के रूप में समझना उचित है (रॉय एट अल., 1912)।

आदिवासी समाज की प्रमुख विशेषता उसका सामुदायिक स्वरूप था। गाँव सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र था, जहाँ पारस्परिक सहयोग, सामुदायिक श्रम तथा प्राकृतिक संसाधनों के साझा उपयोग की परंपराएँ विकसित थीं। ग्राम सभा, पारंपरिक मुखिया और अन्य स्थानीय संस्थाएँ भूमि उपयोग, सामाजिक अनुशासन तथा सामुदायिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं (एल्विन एट अल., 1943)। झारखण्ड की विभिन्न जनजातियों की सामाजिक संरचनाओं में भिन्नताएँ थीं। मुंडा समाज में खूंटकट्टी भूमि व्यवस्था का विशेष महत्व था, जबकि संथाल, उराँव और हो समुदायों की अपनी विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ थीं। कृषि, जंगल और पशुपालन उनकी अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार थे। पर्व, उत्सव, नृत्य, संगीत और धार्मिक अनुष्ठान सामुदायिक एकता को मजबूत करते थे (वर्मा एट अल., 2007) ।

महिलाएँ इस सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का अभिन्न हिस्सा थीं। वे कृषि, बीज संरक्षण, रोपाई, कटाई, वन उत्पादों के संग्रह, पशुपालन तथा घरेलू कार्यों में सक्रिय रहती थीं। लोकगीतों, नृत्यों और सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। फिर भी जनजातीय समाज को पूर्णतः लैंगिक समानतापूर्ण नहीं माना जा सकता, क्योंकि भूमि अधिकार और औपचारिक नेतृत्व में पुरुषों की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली थी (अग्रवाल एट अल., 1994)। औपनिवेशिक हस्तक्षेप ने इस सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन किया। भूमि एवं वन नीतियों, बाजार व्यवस्था, शिक्षा और प्रशासनिक संस्थाओं के विस्तार ने पारंपरिक जीवन को प्रभावित किया। महिलाओं के लिए शिक्षा और सामाजिक संपर्क के नए अवसर बने, किंतु आर्थिक असुरक्षा तथा श्रम का बोझ भी बढ़ा (एक्का एट अल., 2018) ।

3. औपनिवेशिक काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की महिलाओं की सामाजिक स्थिति एकरूप नहीं थी। यह स्थिति समुदाय, जनजातीय पहचान, जाति, वर्ग, भौगोलिक क्षेत्र तथा आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देती है। झारखण्ड का समाज आदिवासी और गैर-आदिवासी समुदायों की विविध सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं से निर्मित था, इसलिए महिलाओं की स्थिति का अध्ययन किसी एक सामान्य दृष्टिकोण से नहीं किया जा सकता। औपनिवेशिक शासन के दौरान भूमि व्यवस्था, बाजार अर्थव्यवस्था, प्रशासनिक हस्तक्षेप, मिशनरी गतिविधियों तथा आधुनिक शिक्षा के विस्तार ने महिलाओं के पारिवारिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया। परंपरागत सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन के बावजूद अधिकांश महिलाओं का जीवन घरेलू उत्तरदायित्वों और आर्थिक श्रम की दोहरी जिम्मेदारी से जुड़ा रहा (अग्रवाल एट अल., 1994)।

3.1 परिवार एवं समाज में महिलाओं की स्थिति

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। वे परिवार की देखभाल के साथ-साथ दैनिक आर्थिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहती थीं। ग्रामीण और जनजातीय परिवारों में भोजन की व्यवस्था, बच्चों की देखभाल, जल एवं ईंधन का संग्रह, पशुपालन तथा कृषि कार्यों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी थी। इस प्रकार घरेलू और उत्पादक दोनों प्रकार का उनका श्रम परिवार की आर्थिक स्थिरता का आधार था, यद्यपि औपचारिक अभिलेखों में उनके योगदान को पर्याप्त मान्यता नहीं मिली (कुमार एट अल., 1993)।

विवाह व्यवस्था महिलाओं की सामाजिक स्थिति को प्रभावित करने वाली प्रमुख संस्था थी। झारखण्ड के विभिन्न समुदायों में विवाह संबंधी परंपराएँ भिन्न थीं। अनेक आदिवासी समुदायों में विवाह सामुदायिक सहभागिता से जुड़ा था तथा कुछ परिस्थितियों में युवक-युवतियों को जीवनसाथी के चयन में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। किंतु यह स्वतंत्रता सभी समुदायों और परिस्थितियों में समान नहीं थी (रॉय एट अल., 1912)। गैर-आदिवासी समाज में जाति और पितृसत्तात्मक मान्यताओं का महिलाओं के जीवन पर अधिक प्रभाव था। विवाह संबंधी निर्णयों में परिवार और पुरुष सदस्यों की भूमिका प्रमुख थी। बाल विवाह तथा कम आयु में विवाह जैसी प्रथाओं ने महिलाओं की शिक्षा, स्वतंत्रता और व्यक्तिगत निर्णय लेने की क्षमता को सीमित किया (चक्रवर्ती एट अल., 2003) ।

मातृत्व महिलाओं की सामाजिक पहचान से गहराई से जुड़ा था। बच्चों के पालन-पोषण, घरेलू कार्यों तथा आर्थिक गतिविधियों की संयुक्त जिम्मेदारी महिलाओं पर रहती थी। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी के कारण गर्भावस्था और प्रसव मुख्यतः पारंपरिक ज्ञान तथा स्थानीय दाइयों के सहयोग से संपन्न होते थे (दास एट अल., 1991)। परिवार और समुदाय में महिलाओं की प्रतिष्ठा उनकी आयु, वैवाहिक स्थिति, मातृत्व तथा आर्थिक योगदान से प्रभावित होती थी। वृद्ध महिलाओं को अनुभव के कारण सम्मान प्राप्त हो सकता था, किंतु औपचारिक निर्णय लेने वाली संस्थाओं में पुरुषों का प्रभुत्व अधिक था। इसलिए महिलाओं की सामाजिक भूमिका महत्वपूर्ण होने के बावजूद उनकी औपचारिक निर्णय लेने की शक्ति प्रायः सीमित रही (एल्विन एट अल., 1943) ।

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

3.2 आदिवासी महिलाओं की सामाजिक स्थिति

झारखण्ड की आदिवासी महिलाओं की सामाजिक स्थिति को विशेष ऐतिहासिक एवं सामाजिक संदर्भ में समझना आवश्यक है। अनेक आदिवासी समुदायों में महिलाओं को सामाजिक जीवन और आर्थिक गतिविधियों में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। वे कृषि, वन उत्पादों के संग्रह, स्थानीय बाजारों तथा सामुदायिक उत्सवों में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। उनके आवागमन और सार्वजनिक जीवन में भागीदारी पर अन्य पितृसत्तात्मक समाजों की तुलना में अपेक्षाकृत कम प्रतिबंध थे, किंतु इसे पूर्ण सामाजिक समानता नहीं माना जा सकता (अग्रवाल एट अल., 1994)।

कृषि एवं वन-आधारित अर्थव्यवस्था में आदिवासी महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। वे बीज बोने, रोपाई, निराई, कटाई तथा खाद्य सामग्री के संरक्षण जैसे कार्यों में सक्रिय रहती थीं। इसके अतिरिक्त जंगलों से फल, कंद-मूल, लकड़ी और अन्य उपयोगी संसाधनों का संग्रह भी उनके दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा था। उनका श्रम परिवार की आय और खाद्य सुरक्षा दोनों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा था (गुहा एट अल., 1963)। सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में भी महिलाओं की सक्रिय भागीदारी थी। पर्व-त्योहारों, विवाह समारोहों, कृषि संबंधी अनुष्ठानों, नृत्य और संगीत में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी। लोकगीतों, मौखिक परंपराओं और सांस्कृतिक ज्ञान के संरक्षण में भी महिलाओं का योगदान उल्लेखनीय था (रॉय एट अल., 1912) ।

फिर भी आदिवासी महिलाओं के अधिकारों की कुछ सीमाएँ थीं। अनेक समुदायों में भूमि एवं संपत्ति के औपचारिक अधिकार मुख्यतः पुरुषों के नियंत्रण में थे तथा ग्राम नेतृत्व और राजनीतिक निर्णयों में पुरुषों का प्रतिनिधित्व अधिक था (सिन्हा एट अल., 1983)। औपनिवेशिक शासन ने भूमि और वन संबंधी परिवर्तनों के माध्यम से आदिवासी महिलाओं के जीवन को प्रभावित किया। पारंपरिक संसाधनों तक पहुँच कम होने से उनके घरेलू एवं आर्थिक श्रम का बोझ बढ़ा। इस प्रकार उन्हें अपेक्षाकृत सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त होने के बावजूद आर्थिक और औपचारिक अधिकारों के क्षेत्र में अनेक सीमाओं का सामना करना पड़ा (एक्का एट अल., 2018) ।

3.3 गैर-आदिवासी महिलाओं की स्थिति

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड के गैर-आदिवासी समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति जाति, वर्ग और पितृसत्तात्मक व्यवस्था से व्यापक रूप से प्रभावित थी। परिवार एवं समाज में पुरुषों को मुख्य निर्णयकर्ता माना जाता था, जबकि महिलाओं की भूमिका मुख्यतः घरेलू कार्यों और पारिवारिक दायित्वों तक सीमित थी। उच्च जाति एवं संपन्न परिवारों में महिलाओं की सार्वजनिक गतिविधियों पर अपेक्षाकृत अधिक प्रतिबंध थे, जबकि निम्न जाति और श्रमिक वर्ग की महिलाएँ आर्थिक आवश्यकताओं के कारण घर से बाहर कार्य भी करती थीं (कुमार एट अल., 1993)। कुछ गैर-आदिवासी समुदायों में पर्दा प्रथा और महिलाओं के आवागमन पर सामाजिक नियंत्रण महत्वपूर्ण था। इस व्यवस्था ने महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी, शिक्षा और स्वतंत्र आवागमन को सीमित किया। यद्यपि पर्दा प्रथा का प्रभाव सभी सामाजिक समूहों में समान नहीं था, फिर भी यह पितृसत्तात्मक नियंत्रण का एक प्रमुख माध्यम थी (चक्रवर्ती एट अल., 2003) ।

बाल विवाह भी महिलाओं की सामाजिक स्थिति से जुड़ी एक गंभीर समस्या थी। कम आयु में विवाह के कारण लड़कियों की शिक्षा और स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास की संभावनाएँ सीमित हो जाती थीं। कम आयु में मातृत्व महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता था। सामाजिक सुधार आंदोलनों और कानूनी प्रयासों के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन की गति धीमी रही (कुमार एट अल., 1993)। विधवा महिलाओं को भी सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। पति पर आर्थिक निर्भरता तथा संपत्ति एवं उत्तराधिकार संबंधी सीमाओं के कारण अनेक विधवाएँ परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर रहती थीं (अग्रवाल एट अल., 1994) ।

4. महिलाओं की आर्थिक स्थिति

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की महिलाओं की आर्थिक स्थिति को समझने के लिए उनके दैनिक श्रम, कृषि एवं वन आधारित गतिविधियों, भूमि संबंधों, मजदूरी तथा प्रवासन की प्रक्रियाओं का समग्र अध्ययन आवश्यक है। झारखण्ड की पारंपरिक अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि, जंगल, पशुपालन और स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित थी। इस अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था। वे केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं थीं, बल्कि कृषि उत्पादन, खाद्य संग्रह, पशुपालन, स्थानीय विनिमय और मजदूरी संबंधी गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। औपनिवेशिक शासन के दौरान भूमि व्यवस्था, वन नीति और बाजार अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तनों ने महिलाओं की आर्थिक भूमिका और उनकी जीवन परिस्थितियों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया (अग्रवाल एट अल., 1994)।

4.1 कृषि एवं वन आधारित अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि थी, जिसमें महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। अधिकांश परिवार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर थे और कृषि उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रहती थी। वे बीजों के चयन एवं संरक्षण, बुआई, रोपाई, निराई, कटाई तथा फसल के संरक्षण जैसे कार्यों में योगदान देती थीं। विशेष रूप से धान की खेती में रोपाई और कटाई जैसे श्रमप्रधान कार्य महिला श्रम से गहराई से जुड़े थे। कटाई के बाद अनाज की सफाई, सुखाने और भंडारण में भी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी (रॉय एट अल., 1912; एल्विन एट अल., 1943) ।

महिलाओं का आर्थिक योगदान केवल खेतों तक सीमित नहीं था। खाद्य सामग्री का प्रसंस्करण, अनाज का संरक्षण, भोजन की व्यवस्था तथा घरेलू आवश्यकताओं का प्रबंधन भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा था। यह अधिकांशतः अवैतनिक श्रम था, किंतु परिवार की खाद्य सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता इसके बिना संभव नहीं थी (कुमार एट अल., 1993)।

वन आधारित अर्थव्यवस्था भी महिलाओं के जीवन का प्रमुख आधार थी। वे जंगलों से जलावन, लकड़ी, फल, कंद-मूल, पत्ते, औषधीय पौधे तथा अन्य उपयोगी उत्पादों का संग्रह करती थीं। कुछ उत्पादों का स्थानीय बाजारों में विनिमय या बिक्री करके अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जाती थी। महिलाओं के पास स्थानीय पर्यावरण और वनस्पतियों के संबंध में महत्वपूर्ण पारंपरिक ज्ञान था, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

हस्तांतरित होता था। पशुपालन, जल संग्रह और घरेलू उत्पादन भी उनकी आर्थिक जिम्मेदारियों का हिस्सा थे। इस प्रकार कृषि, वन और पशुपालन में महिलाओं का श्रम ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना का अभिन्न अंग था (गुहा एट अल., 1963; दास एट अल., 1991) ।

तालिका 4.1: कृषि एवं वन आधारित अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका

आर्थिक गतिविधि	महिलाओं की प्रमुख भूमिका	आर्थिक महत्व
कृषि	बीज चयन, बुआई, रोपाई, निराई एवं कटाई	कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान
खाद्य संरक्षण	अनाज की सफाई, सुखाना एवं भंडारण	परिवार की खाद्य सुरक्षा
वन उत्पाद संग्रह	लकड़ी, फल, कंद-मूल एवं औषधीय पौधों का संग्रह	घरेलू आवश्यकताओं एवं अतिरिक्त आय का स्रोत
पशुपालन	पशुओं की देखभाल एवं चारा व्यवस्था	घरेलू अर्थव्यवस्था को सहयोग
घरेलू उत्पादन	भोजन निर्माण एवं संसाधनों का प्रबंधन	परिवार की दैनिक आर्थिक व्यवस्था

4.2 भूमि व्यवस्था और महिलाओं पर प्रभाव

औपनिवेशिक भूमि एवं राजस्व नीतियों ने झारखण्ड की पारंपरिक आर्थिक संरचना को प्रभावित किया। ब्रिटिश शासन का प्रमुख उद्देश्य भूमि से नियमित राजस्व प्राप्त करना तथा भूमि संबंधों को प्रशासनिक नियंत्रण में लाना था। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न व्यवस्थाएँ लागू की गईं, जिनके कारण पारंपरिक सामुदायिक भूमि अधिकारों पर दबाव बढ़ा (गुहा एट अल., 1963)। झारखण्ड के अनेक जनजातीय समुदायों में भूमि केवल व्यक्तिगत संपत्ति नहीं, बल्कि सामुदायिक पहचान और सामाजिक जीवन का आधार थी। मुंडा समुदाय की खूंटकट्टी व्यवस्था जैसी प्रणालियाँ पारंपरिक सामुदायिक अधिकारों को दर्शाती थीं। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा भूमि अभिलेखों, राजस्व व्यवस्था और नए कानूनी ढाँचों के विस्तार से इन व्यवस्थाओं में परिवर्तन आया तथा बाहरी जमींदारों और महाजनों का प्रभाव बढ़ा (सिंह एट अल., 1985) ।

इन परिवर्तनों का महिलाओं पर विशेष प्रभाव पड़ा। भूमि और संसाधनों तक पहुँच कम होने से कृषि उत्पादन तथा परिवार की खाद्य सुरक्षा प्रभावित हुई और महिलाओं के श्रम का बोझ बढ़ा। आर्थिक कठिनाइयों के कारण उन्हें कृषि एवं घरेलू कार्यों के अतिरिक्त मजदूरी और अन्य आय-उत्पादक गतिविधियों में भाग लेना पड़ा। फिर भी संपत्ति और आर्थिक निर्णयों पर उनका स्वतंत्र नियंत्रण सीमित रहा। वन संसाधनों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ने से जलावन, चारा और अन्य आवश्यक वस्तुओं के संग्रह में भी कठिनाई उत्पन्न हुई। इस प्रकार औपनिवेशिक भूमि व्यवस्था ने महिलाओं की आर्थिक निर्भरता और श्रम भार दोनों को प्रभावित किया (अग्रवाल एट अल., 1994; कुमार एट अल., 1993)

तालिका 4.2: औपनिवेशिक भूमि व्यवस्था का महिलाओं पर प्रभाव

औपनिवेशिक परिवर्तन	महिलाओं पर प्रभाव	प्रमुख परिणाम
भूमि पर राजस्व नियंत्रण	पारंपरिक भूमि व्यवस्था में परिवर्तन	आर्थिक असुरक्षा
सामुदायिक अधिकारों का ह्रास	संसाधनों तक पहुँच में कमी	आजीविका संबंधी कठिनाइयाँ
बाहरी जमींदार एवं मध्यस्थों का प्रभाव	भूमि संबंधी अस्थिरता	परिवार की आर्थिक निर्भरता
वन संसाधनों पर नियंत्रण	जलावन एवं खाद्य सामग्री की कमी	श्रम और समय का बढ़ता बोझ
भूमि से बेदखली	मजदूरी पर निर्भरता	महिलाओं की आर्थिक असुरक्षा में वृद्धि

4.3 मजदूरी एवं श्रम

भूमि आधारित अर्थव्यवस्था में अस्थिरता और आर्थिक कठिनाइयों के बढ़ने के साथ झारखण्ड की महिलाओं का मजदूरी आधारित श्रम से संबंध अधिक मजबूत हुआ। कृषि मजदूरी ग्रामीण महिलाओं के लिए आय का महत्वपूर्ण साधन थी। भूमि-विहीन अथवा सीमित भूमि वाले परिवारों की महिलाएँ बुआई, रोपाई, निराई और कटाई जैसे कार्यों में मजदूरी करती थीं। उनका रोजगार प्रायः मौसमी होता था तथा कम मजदूरी और काम की अनिश्चितता के कारण आर्थिक असुरक्षा बनी रहती थी (कुमार एट अल., 1993)। औपनिवेशिक काल में कोयला उद्योग और खनन क्षेत्रों के विस्तार के साथ महिला श्रम का उपयोग बढ़ा। महिलाएँ कोयला ढोने, छँटाई तथा अन्य श्रमप्रधान कार्यों में लगीं। भारी शारीरिक श्रम, धूल, असुरक्षित कार्यस्थल और लंबे कार्य घंटे उनके स्वास्थ्य के लिए गंभीर चुनौतियाँ थे। इसके साथ घरेलू और मातृत्व संबंधी जिम्मेदारियों का बोझ भी बना रहता था, जिससे उनके श्रम का दोहरा स्वरूप स्पष्ट होता है (सेठी एट अल., 1996) ।

प्रवासन भी महिला श्रम का महत्वपूर्ण पक्ष था। रोजगार की तलाश में अनेक महिलाएँ पुरुषों के साथ चाय बागानों, कृषि क्षेत्रों और औद्योगिक केंद्रों की ओर गईं। प्रवासन ने आय के अवसर दिए, किंतु कम मजदूरी, अस्थिर रोजगार, खराब आवास और सीमित स्वास्थ्य सुविधाओं जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न कीं (गुहा एट अल., 1963)। अधिकांश महिला श्रमिक असंगठित क्षेत्र से जुड़ी थीं और उन्हें स्थायी रोजगार, नियमित आय तथा सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं थी। इसलिए महिलाओं का आर्थिक योगदान व्यापक होने के बावजूद उनके श्रम को पर्याप्त आर्थिक मान्यता और सुरक्षा नहीं मिल सकी (अग्रवाल एट अल., 1994) ।

तालिका 4.3: औपनिवेशिक काल में महिलाओं के मजदूरी एवं श्रम के प्रमुख क्षेत्र

श्रम क्षेत्र	महिलाओं का कार्य	प्रमुख समस्याएँ
कृषि मजदूरी	बुआई, रोपाई, निराई एवं कटाई	कम मजदूरी एवं मौसमी रोजगार
खनन उद्योग	कोयला ढोना, छँटाई एवं अन्य श्रम	कठिन एवं असुरक्षित कार्य परिस्थितियाँ
चाय बागान	कृषि एवं श्रम कार्य	प्रवासन एवं सामाजिक असुरक्षा
वन आधारित श्रम	वन उत्पादों का संग्रह एवं बिक्री	संसाधनों पर सरकारी नियंत्रण
असंगठित श्रम	घरेलू उत्पादन एवं मौसमी कार्य	नियमित आय एवं सामाजिक सुरक्षा का अभाव

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

5. औपनिवेशिक नीतियाँ और महिलाओं का जीवन

औपनिवेशिक शासन ने झारखण्ड की पारंपरिक सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन किए। ब्रिटिश प्रशासन की भूमि, वन, औद्योगिक तथा श्रम संबंधी नीतियों का मूल उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों और उत्पादन के साधनों पर अधिक प्रभावी नियंत्रण स्थापित करना तथा औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के लिए राजस्व और कच्चा माल प्राप्त करना था। इन नीतियों का प्रभाव पुरुषों और महिलाओं पर समान रूप से नहीं पड़ा। झारखण्ड की महिलाओं का दैनिक जीवन भूमि, जंगल, कृषि, जल और सामुदायिक संसाधनों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। इसलिए जब औपनिवेशिक शासन ने इन संसाधनों पर राज्य का नियंत्रण बढ़ाया, तब महिलाओं की आजीविका, श्रम, पारिवारिक उत्तरदायित्व और सामाजिक स्थिति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आए (गुहा एट अल., 1963)।

5.1 भूमि एवं वन नीतियों का प्रभाव

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासन ने भूमि और वन को राजस्व तथा आर्थिक संसाधनों के रूप में देखना प्रारंभ किया। झारखण्ड के अनेक जनजातीय समुदायों की पारंपरिक व्यवस्था भूमि और जंगल के सामुदायिक उपयोग पर आधारित थी। परिवारों और गाँवों के जीवन में कृषि भूमि के साथ-साथ जंगलों का भी विशेष महत्व था। जंगलों से भोजन, जलावन, पशुओं के लिए चारा, लकड़ी, औषधीय पौधे, फल, कंद-मूल और अन्य आवश्यक संसाधन प्राप्त होते थे। महिलाओं का दैनिक श्रम इन प्राकृतिक संसाधनों से सीधे जुड़ा था। इसलिए औपनिवेशिक वन नीति ने महिलाओं के जीवन पर प्रत्यक्ष और व्यापक प्रभाव डाला (अग्रवाल एट अल., 1994)। ब्रिटिश शासन द्वारा वन कानूनों के विस्तार के साथ जंगलों पर राज्य का नियंत्रण बढ़ने लगा। वनों के उपयोग को विभिन्न कानूनी श्रेणियों में विभाजित किया गया तथा स्थानीय समुदायों के पारंपरिक अधिकारों को नियंत्रित करने का प्रयास किया गया। जिन जंगलों को पहले स्थानीय समुदाय अपनी सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुसार उपयोग करते थे, उन पर धीरे-धीरे सरकारी नियंत्रण स्थापित होने लगा। लकड़ी, विशेष रूप से रेलवे और औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए उपयोगी वनों को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण माना गया। इस प्रक्रिया में स्थानीय निवासियों के पारंपरिक उपयोग अधिकारों और औपनिवेशिक राज्य की आर्थिक आवश्यकताओं के बीच संघर्ष उत्पन्न हुआ (गुहा एट अल., 1963)।

महिलाओं के लिए जंगल केवल आर्थिक संसाधन नहीं था, बल्कि दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण आधार था। जलावन लकड़ी, खाद्य सामग्री, पत्ते, घास तथा लघु वन उत्पादों के संग्रह का कार्य प्रायः महिलाओं द्वारा किया जाता था। वन क्षेत्रों में प्रवेश और संसाधनों के उपयोग पर प्रतिबंध लगने से महिलाओं को आवश्यक वस्तुओं के लिए अधिक दूरी तय करनी पड़ती थी। इससे उनके दैनिक श्रम का समय और शारीरिक बोझ बढ़ा। पहले जिन संसाधनों को स्थानीय समुदाय अपेक्षाकृत सहज रूप से प्राप्त कर लेते थे, उनके लिए औपनिवेशिक कानूनों के कारण अनुमति, नियंत्रण या दंड का भय उत्पन्न हो सकता था। इस प्रकार वन नीति ने महिलाओं के समय, श्रम और आजीविका की संरचना में परिवर्तन किया (अग्रवाल एट अल., 1994)। भूमि संबंधी औपनिवेशिक नीतियों का प्रभाव भी महिलाओं के जीवन पर गहरा पड़ा। बढ़ते लगान, भूमि संबंधी अभिलेखों की नई व्यवस्था, जमींदारों और मध्यस्थों के प्रभाव तथा ऋणग्रस्तता के कारण अनेक स्थानीय परिवार आर्थिक संकट का सामना करने लगे। भूमि से बेदखली अथवा भूमि पर अधिकारों की अस्थिरता का सीधा प्रभाव परिवार की खाद्य सुरक्षा पर पड़ता था। चूँकि महिलाओं का श्रम कृषि और घरेलू अर्थव्यवस्था से जुड़ा था, इसलिए भूमि के नुकसान के बाद उनके कार्य और अधिक कठिन हो गए। परिवार की आय में कमी आने पर महिलाओं को कृषि मजदूरी, वन उत्पादों के संग्रह अथवा अन्य अनौपचारिक आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से परिवार का सहयोग करना पड़ता था (सिन्हा एट अल., 1983)।

5.2 औद्योगीकरण एवं खनन

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड के खनिज संसाधनों का व्यवस्थित दोहन शुरू हुआ। विशेष रूप से कोयला क्षेत्रों के विकास ने इस क्षेत्र को औद्योगिक अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण केंद्रों में परिवर्तित किया। रेलमार्गों के विस्तार, औद्योगिक उत्पादन तथा ब्रिटिश साम्राज्य की ऊर्जा आवश्यकताओं ने कोयले की मांग को बढ़ाया। इसके परिणामस्वरूप झरिया, धनबाद और अन्य खनन क्षेत्रों का विस्तार हुआ तथा बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता उत्पन्न हुई। इस औद्योगिक विकास ने झारखण्ड की सामाजिक संरचना, श्रम संबंधों और पारिवारिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए (सिंह एट अल., 1985)। खनन उद्योग में महिला श्रम का भी उपयोग किया गया। विशेष रूप से औपनिवेशिक काल के प्रारंभिक और मध्य चरणों में महिलाएँ खनन कार्यों से संबंधित अनेक प्रकार के श्रम में भाग लेती थीं। वे कोयला ढोने, छँटाई करने, सतही कार्यों तथा अन्य श्रमप्रधान गतिविधियों में कार्य करती थीं। महिला श्रमिकों का रोजगार मुख्यतः कम मजदूरी और कठिन शारीरिक श्रम से जुड़ा हुआ था। औद्योगिक श्रम व्यवस्था में महिलाओं को पुरुष श्रमिकों के समान अवसर या सुरक्षा प्राप्त नहीं थी और उनका श्रम अक्सर निम्न वेतन तथा असंगठित परिस्थितियों से जुड़ा रहता था (सेठी एट अल., 1996)।

खनन क्षेत्रों की कार्य परिस्थितियाँ अत्यंत कठिन हो सकती थीं। लंबे कार्य घंटे, भारी शारीरिक श्रम, धूल और प्रदूषण तथा कार्यस्थल की सुरक्षा संबंधी सीमाएँ महिला श्रमिकों के लिए गंभीर समस्याएँ थीं। मातृत्व और घरेलू जिम्मेदारियों के साथ मजदूरी का कार्य करने वाली महिलाओं को दोहरे श्रम भार का सामना करना पड़ता था। खनन क्षेत्रों में पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं, स्वच्छ आवास और सुरक्षित कार्यस्थलों का अभाव उनके जीवन को और अधिक कठिन बनाता था। महिला श्रमिकों के स्वास्थ्य पर औद्योगिक वातावरण के प्रभाव के साथ-साथ कुपोषण और आर्थिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ भी जुड़ी हुई थीं (कुमार एट अल., 1993)। औद्योगीकरण ने पारिवारिक जीवन को भी प्रभावित किया। ग्रामीण और सामुदायिक जीवन से जुड़े परिवार रोजगार के लिए खनन और औद्योगिक क्षेत्रों की ओर जाने लगे। इससे पारंपरिक पारिवारिक संरचनाओं और सामाजिक संबंधों में परिवर्तन हुआ। महिलाओं को नए शहरी या अर्ध-शहरी वातावरण में रहना पड़ा, जहाँ पारंपरिक सामुदायिक सहयोग व्यवस्था अपेक्षाकृत कमजोर हो सकती थी। रोजगार और आय के अवसर बढ़ने के बावजूद अस्थिर मजदूरी, स्वास्थ्य जोखिम तथा आवास संबंधी कठिनाइयाँ बनी रहीं। इस प्रकार औद्योगीकरण महिलाओं के लिए आर्थिक अवसर और सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ-दोनों लेकर आया (चक्रवर्ती एट अल., 2003)।

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

5.3 विस्थापन एवं प्रवासन

औपनिवेशिक काल की भूमि, वन और औद्योगिक नीतियों के परिणामस्वरूप विस्थापन और प्रवासन की प्रक्रिया भी बढ़ी। भूमि पर अधिकारों की अस्थिरता, बढ़ते लगान, ऋणग्रस्तता तथा कृषि संसाधनों की कमी के कारण अनेक परिवारों को अपने पारंपरिक निवास स्थानों से बाहर रोजगार की तलाश करनी पड़ी। झारखण्ड से श्रमिकों का प्रवासन विभिन्न क्षेत्रों की ओर हुआ और अनेक परिवार मजदूरी आधारित अर्थव्यवस्था से जुड़ गए। इस प्रक्रिया का महिलाओं के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा (गुहा एट अल., 1963)। पुरुषों के रोजगार के लिए बाहर जाने की स्थिति में महिलाओं पर कृषि, घरेलू कार्य और बच्चों की देखभाल की अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ आ जाती थीं। उन्हें सीमित संसाधनों में परिवार का जीवन संचालित करना पड़ता था। दूसरी ओर अनेक महिलाएँ स्वयं भी परिवार के साथ या स्वतंत्र रूप से रोजगार की तलाश में खनन क्षेत्रों, कृषि क्षेत्रों तथा अन्य श्रम स्थलों पर गईं। महिलाओं का यह प्रवासन केवल आर्थिक अवसर की खोज नहीं था, बल्कि कई बार पारंपरिक आजीविका के साधनों के कमजोर होने की मजबूरी का परिणाम था (अग्रवाल एट अल., 1994)। प्रवासी महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक असुरक्षा की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। नए स्थान पर सुरक्षित आवास, स्थायी रोजगार, उचित मजदूरी और स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव उनके जीवन को प्रभावित करता था। पारंपरिक समुदाय और सामाजिक सहयोग से दूर होने के कारण उनकी असुरक्षा बढ़ सकती थी। महिला श्रमिकों को कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव तथा शोषण का सामना करने की संभावना भी अधिक रहती थी। परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं और घरेलू जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाए रखना उनके लिए चुनौतीपूर्ण था (कुमार एट अल., 1993)। विस्थापन का प्रभाव केवल भौगोलिक स्थान परिवर्तन तक सीमित नहीं था। इससे महिलाओं की सामाजिक पहचान, सामुदायिक संबंध और सांस्कृतिक जीवन भी प्रभावित हुए। पारंपरिक गाँव और समुदाय से दूर होने पर सामूहिक सहयोग तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से उनका संबंध कमजोर हो सकता था। इसके बावजूद प्रवासन ने महिलाओं को नए सामाजिक अनुभवों और आर्थिक गतिविधियों से भी परिचित कराया। कुछ परिस्थितियों में मजदूरी और सार्वजनिक कार्यों में भागीदारी ने उनके सामाजिक अनुभवों का विस्तार किया, हालांकि इसे व्यापक आर्थिक स्वतंत्रता के रूप में नहीं देखा जा सकता।

6. शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सुधार

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की महिलाओं के जीवन में शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुधार से संबंधित परिवर्तन धीरे-धीरे दिखाई देने लगे। यद्यपि इन परिवर्तनों का प्रभाव क्षेत्र, समुदाय और आर्थिक वर्ग के अनुसार भिन्न था, फिर भी आधुनिक शिक्षा, मिशनरी गतिविधियों तथा औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा विकसित कुछ संस्थागत व्यवस्थाओं ने महिलाओं के सामाजिक जीवन को प्रभावित किया। झारखण्ड के ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में परिवर्तन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी रही, क्योंकि अधिकांश आबादी पारंपरिक जीवन-पद्धतियों, सीमित आर्थिक संसाधनों तथा भौगोलिक कठिनाइयों से जुड़ी हुई थी। फिर भी औपनिवेशिक काल में शिक्षा और सामाजिक संपर्क के नए माध्यमों ने महिलाओं के लिए चेतना और परिवर्तन की कुछ नई संभावनाएँ उत्पन्न कीं (एल्विन एट अल., 1943)।

6.1 महिलाओं की शिक्षा

औपनिवेशिक काल में भारत में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का विस्तार मुख्यतः प्रशासनिक आवश्यकताओं, मिशनरी गतिविधियों तथा औपनिवेशिक नीतियों के माध्यम से हुआ। झारखण्ड में शिक्षा के प्रसार की गति प्रारंभिक चरणों में धीमी थी, विशेष रूप से दूरस्थ जनजातीय और ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की संख्या सीमित थी। पुरुष शिक्षा की तुलना में महिला शिक्षा को अपेक्षाकृत कम प्राथमिकता दी गई। अधिकांश परिवारों में लड़कियों को घरेलू कार्य, कृषि संबंधी गतिविधियों तथा परिवार की देखभाल में सहयोग करना पड़ता था, जिसके कारण नियमित शिक्षा प्राप्त करना उनके लिए कठिन था (कुमार एट अल., 1993)।

झारखण्ड में आधुनिक शिक्षा के विकास में ईसाई मिशनरियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। मिशनरी संस्थाओं ने विभिन्न जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालयों और प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की। इन संस्थाओं का उद्देश्य धार्मिक गतिविधियों के साथ-साथ शिक्षा का प्रसार करना भी था। मिशनरी विद्यालयों के माध्यम से स्थानीय समुदायों के बच्चों को पढ़ने-लिखने का अवसर मिला। अनेक क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा के लिए भी विशेष प्रयास किए गए, जिससे महिला शिक्षा की प्रारंभिक आधारभूमि तैयार हुई। मिशनरी शिक्षा ने जनजातीय समुदायों को बाहरी शिक्षा व्यवस्था और आधुनिक ज्ञान के कुछ नए रूपों से परिचित कराया (सिंह एट अल., 1985)।

आदिवासी क्षेत्रों में विद्यालयों की स्थापना का सामाजिक महत्व केवल साक्षरता तक सीमित नहीं था। शिक्षा के माध्यम से स्थानीय समाज का संपर्क व्यापक प्रशासनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से हुआ। शिक्षित वर्ग के विकास के साथ समाज में अधिकार, प्रतिनिधित्व और सामाजिक परिवर्तन से संबंधित नई चेतना उत्पन्न होने लगी। महिला शिक्षा का विस्तार सीमित होने के बावजूद जिन महिलाओं और लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला, उनके लिए यह पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं से बाहर नए अनुभवों का माध्यम बना। शिक्षा ने महिलाओं की सामाजिक चेतना तथा आत्मविश्वास के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (एक्का एट अल., 2018)।

फिर भी औपनिवेशिक काल में महिला शिक्षा अनेक सीमाओं से घिरी हुई थी। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की दूरी, आर्थिक कठिनाइयाँ, सामाजिक रूढ़ियाँ तथा घरेलू उत्तरदायित्व लड़कियों की शिक्षा में प्रमुख बाधाएँ थीं। कई परिवारों में लड़कियों की शिक्षा को आवश्यक नहीं माना जाता था। विवाह की कम आयु और घरेलू कार्यों की जिम्मेदारी भी शिक्षा जारी रखने में बाधक थी। जनजातीय क्षेत्रों में भौगोलिक दूरी और सीमित शैक्षणिक संस्थाओं के कारण समस्या और गंभीर हो जाती थी। इस प्रकार शिक्षा का विस्तार एक समान प्रक्रिया नहीं था और इसका लाभ केवल समाज के सीमित वर्गों तक पहुँच पाया (चक्रवर्ती एट अल., 2003)।

6.2 स्वास्थ्य की स्थिति

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड के अधिकांश ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था। स्थानीय समुदायों का स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान मुख्यतः पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों पर आधारित था। जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों और स्थानीय औषधीय ज्ञान का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता था। पारंपरिक वैद्य, ओझा तथा स्थानीय उपचारक समुदाय के स्वास्थ्य

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। प्राकृतिक पर्यावरण और स्थानीय अनुभवों से विकसित यह चिकित्सा ज्ञान ग्रामीण समाज के लिए स्वास्थ्य सेवा का प्रमुख साधन था (एल्विन एट अल., 1943)।

महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी, क्योंकि वे मातृत्व, घरेलू श्रम और आर्थिक गतिविधियों की संयुक्त जिम्मेदारी निभाती थीं। गर्भावस्था और प्रसव की प्रक्रिया प्रायः घर या समुदाय स्तर पर पारंपरिक दाइयों की सहायता से संपन्न होती थी। आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं की अनुपलब्धता के कारण प्रसव संबंधी जटिलताएँ महिलाओं और शिशुओं दोनों के लिए गंभीर समस्या बन सकती थीं। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं का पर्याप्त संस्थागत विकास नहीं हुआ था, विशेषकर दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में (कुमार एट अल., 1993)।

कुपोषण, गरीबी और कठोर श्रम भी महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक थे। ग्रामीण और श्रमिक परिवारों की महिलाएँ कृषि कार्य, ईंधन और जल संग्रह, भोजन तैयार करने तथा बच्चों की देखभाल के साथ अन्य आर्थिक गतिविधियों में भी भाग लेती थीं। इस दोहरे श्रम भार के कारण उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। आर्थिक कठिनाइयों के कारण पर्याप्त भोजन और उपचार की सुविधा सभी परिवारों को उपलब्ध नहीं थी। औपनिवेशिक चिकित्सा व्यवस्था का विस्तार मुख्यतः शहरी और प्रशासनिक केंद्रों तक सीमित रहने के कारण ग्रामीण तथा जनजातीय समुदायों की पहुँच आधुनिक स्वास्थ्य सेवाओं तक बहुत कम थी (अग्रवाल एट अल., 1994)।

ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं की कमी एक व्यापक समस्या थी। अस्पतालों और प्रशिक्षित चिकित्सकों की संख्या सीमित थी तथा दूरदराज के क्षेत्रों तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच कठिन थी। परिवहन और संचार की अपर्याप्त व्यवस्था ने भी गंभीर रोगों या प्रसव संबंधी आपात स्थितियों में महिलाओं की कठिनाइयों को बढ़ाया। इसलिए स्थानीय समुदायों को लंबे समय तक पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान और सामुदायिक सहयोग पर निर्भर रहना पड़ा (दास एट अल., 1991)।

6.3 सामाजिक सुधार की प्रक्रिया

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड के सामाजिक जीवन में सुधार और परिवर्तन की प्रक्रिया विभिन्न माध्यमों से विकसित हुई। मिशनरी गतिविधियाँ, आधुनिक शिक्षा, प्रशासनिक परिवर्तन तथा व्यापक भारतीय सामाजिक सुधार आंदोलनों के प्रभाव ने स्थानीय समाज को प्रभावित किया। मिशनरियों ने शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में संस्थाएँ स्थापित कीं, जिनके माध्यम से महिलाओं और जनजातीय समुदायों तक कुछ नए सामाजिक विचार पहुँचे। यद्यपि मिशनरी गतिविधियों के धार्मिक उद्देश्य भी थे, फिर भी शिक्षा और स्वास्थ्य संस्थाओं के विकास ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में योगदान दिया (सिंह एट अल., 1985)। शिक्षा के माध्यम से महिलाओं के जीवन में सामाजिक चेतना के नए अवसर उत्पन्न हुए। पढ़ने-लिखने की क्षमता ने महिलाओं को व्यापक सामाजिक संसार से जोड़ने की संभावनाएँ विकसित कीं। शिक्षित महिलाओं और पुरुषों के माध्यम से परिवार तथा समुदाय में शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह और सामाजिक अधिकारों से संबंधित नए विचारों का प्रसार हुआ। यद्यपि यह प्रक्रिया सीमित थी और पूरे झारखण्ड में समान रूप से नहीं फैली, फिर भी इसने पारंपरिक सामाजिक धारणाओं पर विचार करने की नई परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं (चक्रवर्ती एट अल., 2003)।

महिलाओं की चेतना का विकास केवल औपचारिक शिक्षा का परिणाम नहीं था। कृषि, मजदूरी, सामुदायिक जीवन और सामाजिक आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी ने भी महिलाओं के अनुभवों को व्यापक बनाया। आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के कारण जब महिलाएँ नए क्षेत्रों में कार्य करने लगीं, तब उनका संपर्क विभिन्न समुदायों और सामाजिक परिस्थितियों से हुआ। इससे सामाजिक परिवर्तन और अधिकारों के प्रति उनकी समझ क्रमशः विकसित हुई। महिलाओं की चेतना का यह विकास एक धीमी और बहुआयामी ऐतिहासिक प्रक्रिया थी (अग्रवाल एट अल., 1994)। सामाजिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव झारखण्ड में क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार दिखाई दिया। बाल विवाह, महिला शिक्षा, विधवा की स्थिति तथा सामाजिक असमानता जैसे प्रश्नों पर व्यापक भारतीय समाज में विचार-विमर्श हो रहा था। इन विचारों का प्रभाव धीरे-धीरे झारखण्ड के शिक्षित और शहरी वर्गों तक भी पहुँचा। हालाँकि ग्रामीण और दूरस्थ जनजातीय क्षेत्रों में परिवर्तन की गति धीमी थी, फिर भी शिक्षा और सामाजिक संपर्क ने पारंपरिक मान्यताओं में परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ की (कुमार एट अल., 1993)।

7. महिला सहभागिता और प्रतिरोध

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की महिलाओं की भूमिका केवल परिवार, कृषि और घरेलू अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं थी। औपनिवेशिक शासन द्वारा भूमि, जंगल और प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते नियंत्रण ने स्थानीय समाज के पारंपरिक जीवन को प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के प्रतिरोध विकसित हुए। इन प्रतिरोधों में महिलाओं की भागीदारी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में दिखाई देती है। यद्यपि औपनिवेशिक अभिलेखों और पारंपरिक इतिहास लेखन में महिलाओं की भूमिका को अपेक्षाकृत कम दर्ज किया गया है, फिर भी स्थानीय स्मृतियों, लोक परंपराओं और जनजातीय आंदोलनों के सामाजिक इतिहास से स्पष्ट होता है कि महिलाएँ सामुदायिक संघर्षों और प्रतिरोध की प्रक्रियाओं का अभिन्न हिस्सा थीं। महिलाओं की सहभागिता को केवल युद्ध या प्रत्यक्ष राजनीतिक नेतृत्व के आधार पर नहीं, बल्कि सामाजिक सहयोग, संसाधनों की रक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण तथा राजनीतिक चेतना के विकास के व्यापक संदर्भ में समझना आवश्यक है (गुहा एट अल., 1963)।

7.1 जनजातीय आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका

झारखण्ड का औपनिवेशिक इतिहास विभिन्न जनजातीय आंदोलनों और विद्रोहों से जुड़ा रहा है। इन आंदोलनों की पृष्ठभूमि में भूमि पर बाहरी नियंत्रण, बढ़ता लगान, महाजनी शोषण, वन संबंधी प्रतिबंध तथा पारंपरिक अधिकारों का ह्रास प्रमुख कारण थे। स्थानीय समुदायों ने औपनिवेशिक प्रशासन और उसके सहयोगी आर्थिक समूहों के विरुद्ध विभिन्न रूपों में प्रतिरोध किया। यद्यपि इतिहास में कोल विद्रोह, संथाल विद्रोह और मुंडा आंदोलन जैसे संघर्षों का वर्णन प्रायः पुरुष नेतृत्व के आधार पर किया जाता है, लेकिन इन आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका सामुदायिक सहभागिता के स्तर पर महत्वपूर्ण रही (सिंह एट अल., 1985)।

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

महिलाओं ने प्रत्यक्ष संघर्षों के अतिरिक्त आंदोलनों के लिए आवश्यक सामाजिक और आर्थिक सहयोग प्रदान किया। संघर्ष की परिस्थितियों में भोजन, पानी और अन्य आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था, घायल व्यक्तियों की देखभाल तथा समुदाय के भीतर सूचना और संपर्क बनाए रखने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। ग्रामीण और जनजातीय समाज में पुरुषों के संघर्ष या विद्रोह में सक्रिय होने पर महिलाओं को परिवार और समुदाय की दैनिक जिम्मेदारियों का अतिरिक्त भार संभालना पड़ता था। इसलिए प्रतिरोध की प्रक्रिया को केवल प्रत्यक्ष युद्ध या हथियारबंद संघर्ष तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता। आंदोलन के सामाजिक आधार को बनाए रखने में महिलाओं के योगदान की केंद्रीय भूमिका थी (एल्विन एट अल., 1943)।
भूमि और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा झारखण्ड के जनजातीय प्रतिरोध का प्रमुख आधार रही। जनजातीय समुदायों के लिए भूमि केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक परंपरा और सामुदायिक अस्तित्व से जुड़ी हुई थी। इसी प्रकार जंगल भोजन, ईंधन, औषधि और अन्य दैनिक आवश्यकताओं का प्रमुख स्रोत था। महिलाओं का जीवन इन संसाधनों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ था। भूमि से बेदखली या जंगलों पर नियंत्रण बढ़ने का प्रभाव उनके दैनिक श्रम और परिवार की आजीविका पर पड़ता था। इस कारण संसाधनों की रक्षा से जुड़े सामुदायिक आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी उनके जीवन के वास्तविक अनुभवों से जुड़ी हुई थी (अग्रवाल एट अल., 1994)। सामुदायिक प्रतिरोध में महिलाओं ने सामाजिक एकता बनाए रखने में भी योगदान दिया। जनजातीय समाज में सामूहिक श्रम, पारस्परिक सहयोग और सामुदायिक संबंध संघर्ष की परिस्थितियों में महत्वपूर्ण शक्ति का स्रोत बनते थे। महिलाएँ परिवारों के बीच संपर्क बनाए रखने, सामाजिक सहयोग की व्यवस्था करने तथा पारंपरिक सांस्कृतिक गतिविधियों को जीवित रखने में भूमिका निभाती थीं। लोकगीतों और मौखिक परंपराओं के माध्यम से संघर्ष, अन्याय और सामुदायिक स्मृतियों को भी संरक्षित किया जाता था। इस प्रकार महिलाओं की भूमिका प्रतिरोध की सामाजिक चेतना और सामूहिक स्मृति को बनाए रखने से भी संबंधित थी (रॉय एट अल., 1912)।

7.2 स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता

बीसवीं शताब्दी में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव झारखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों तक भी पहुँचा। असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसी राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियों ने स्थानीय समाज में राजनीतिक चेतना का विस्तार किया। यद्यपि झारखण्ड के ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में राष्ट्रीय आंदोलन की भागीदारी का स्वरूप स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार भिन्न था, फिर भी स्वतंत्रता, स्वशासन और सामाजिक अधिकारों से संबंधित विचारों का प्रसार धीरे-धीरे बढ़ा (चक्रवर्ती एट अल., 2003)। महिलाओं की स्थानीय स्तर पर सहभागिता विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। शिक्षित और शहरी महिलाओं ने सार्वजनिक बैठकों, सामाजिक संगठनों तथा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना प्रारंभ किया। ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी अक्सर सामूहिक सभाओं, स्थानीय आंदोलनों और सामाजिक सहयोग के माध्यम से सामने आई। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी ने पारंपरिक रूप से घरेलू क्षेत्र तक सीमित महिला भूमिका को चुनौती देने की प्रक्रिया आरंभ की। हालांकि महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का स्तर सभी वर्गों और क्षेत्रों में समान नहीं था, फिर भी स्वतंत्रता आंदोलन ने महिलाओं के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश के नए अवसर प्रदान किए (कुमार एट अल., 1993)।
राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्वपूर्ण प्रभाव राजनीतिक चेतना के विकास के रूप में देखा जा सकता है। स्वराज, अधिकार, समानता और स्वतंत्रता जैसे विचारों ने महिलाओं के सामाजिक अनुभवों को भी प्रभावित किया। शिक्षा और सार्वजनिक गतिविधियों में भागीदारी के माध्यम से कुछ महिलाओं को सामाजिक प्रश्नों पर अपनी राय व्यक्त करने का अवसर मिला। राष्ट्रीय आंदोलन और स्थानीय सामाजिक आंदोलनों के बीच संबंध ने महिलाओं की राजनीतिक समझ को व्यापक बनाया। फिर भी अधिकांश ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी को औपचारिक राजनीतिक सदस्यता या नेतृत्व तक सीमित नहीं माना जा सकता; उनका योगदान अक्सर परिवार और समुदाय आधारित सहभागिता के रूप में अधिक दिखाई देता है (अग्रवाल एट अल., 1994)। झारखण्ड में स्वतंत्रता आंदोलन की प्रक्रिया को जनजातीय अधिकारों और स्थानीय सामाजिक प्रश्नों से भी अलग करके नहीं देखा जा सकता। भूमि, जंगल और सामाजिक सम्मान के प्रश्न स्थानीय राजनीतिक चेतना का हिस्सा बने रहे। महिलाओं ने इन मुद्दों से संबंधित सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेकर राजनीतिक प्रतिरोध के व्यापक वातावरण में योगदान दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना और स्थानीय संघर्षों के अनुभवों ने महिलाओं की सहभागिता के विभिन्न रूपों को जन्म दिया (सिंह एट अल., 1985) ।

7.3 प्रतिरोध के सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप

औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध प्रतिरोध केवल राजनीतिक विद्रोहों या प्रत्यक्ष संघर्षों तक सीमित नहीं था। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी स्थानीय समुदायों ने अपनी पहचान और परंपराओं की रक्षा के लिए विभिन्न प्रयास किए। झारखण्ड की लोक परंपराएँ इस सांस्कृतिक प्रतिरोध का महत्वपूर्ण माध्यम थीं। लोकगीत, लोककथाएँ, नृत्य और सामुदायिक उत्सवों के माध्यम से समुदायों ने अपनी ऐतिहासिक स्मृतियों, सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित रखा। महिलाओं ने इन परंपराओं को जीवित रखने और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (एल्विन एट अल., 1943)। सामुदायिक संगठन भी प्रतिरोध की एक महत्वपूर्ण सामाजिक शक्ति थे। गाँव आधारित पारंपरिक संस्थाएँ और सामूहिक श्रम की व्यवस्थाएँ समुदाय को संगठित रखने में सहायक थीं। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा पारंपरिक संस्थाओं पर हस्तक्षेप के बावजूद स्थानीय समाज ने अपने सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को पूरी तरह समाप्त नहीं होने दिया। महिलाओं ने परिवार और समुदाय के बीच संबंधों को बनाए रखने तथा सामूहिक गतिविधियों में भाग लेकर सामाजिक संगठन को मजबूत किया (रॉय एट अल., 1912) ।
सांस्कृतिक प्रतिरोध के माध्यम से समुदायों ने अपनी भाषा, धार्मिक परंपराओं और जीवन-पद्धतियों की रक्षा करने का प्रयास किया। औपनिवेशिक प्रशासन और बाहरी सामाजिक प्रभावों के बीच अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखना स्वयं में एक प्रकार का प्रतिरोध था। महिलाओं की भूमिका विशेष रूप से लोकभाषा, लोकगीत, पारंपरिक ज्ञान, भोजन संस्कृति और धार्मिक अनुष्ठानों के संरक्षण में

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

दिखाई देती है। घरेलू और सामुदायिक दोनों क्षेत्रों में उनकी सक्रियता ने सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में सहायता की (अग्रवाल एट अल., 1994)। महिलाओं की अप्रत्यक्ष राजनीतिक भूमिका को भी प्रतिरोध के व्यापक संदर्भ में समझना आवश्यक है। सभी महिलाओं को औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं में स्थान प्राप्त नहीं था, लेकिन उनके दैनिक कार्य और सामुदायिक सहभागिता राजनीतिक प्रक्रियाओं से अलग नहीं थे। भूमि की रक्षा, जंगलों तक पहुँच, परिवार की आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक सम्मान जैसे प्रश्न सीधे राजनीतिक महत्व रखते थे। इन प्रश्नों से जुड़ी महिलाओं की गतिविधियाँ औपचारिक राजनीति के बाहर रहते हुए भी प्रतिरोध और राजनीतिक चेतना का आधार तैयार करती थीं।

8. औपनिवेशिक काल में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन: एक विश्लेषण

औपनिवेशिक काल में झारखण्ड की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में व्यापक और बहुआयामी परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों को केवल आधुनिक संस्थाओं के विकास के रूप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि ये पारंपरिक सामुदायिक व्यवस्था, औपनिवेशिक आर्थिक हितों तथा भूमि एवं प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते नियंत्रण से भी जुड़े थे। महिलाओं के जीवन पर इन परिवर्तनों का विशेष प्रभाव पड़ा। एक ओर शिक्षा, संचार और रोजगार के नए अवसर विकसित हुए, वहीं दूसरी ओर भूमि से बेदखली, वन अधिकारों में कमी और आर्थिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ भी बढ़ीं (अग्रवाल एट अल., 1994)। औपनिवेशिक शासन से पूर्व झारखण्ड के अनेक जनजातीय समुदायों की अर्थव्यवस्था कृषि, जंगल, पशुपालन और सामुदायिक श्रम पर आधारित थी। महिलाओं की भूमिका केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं थी। वे कृषि, बीज संरक्षण, खाद्य संग्रह, पशुपालन तथा सामुदायिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेती थीं। इस प्रकार उनका श्रम ग्रामीण अर्थव्यवस्था और परिवार की खाद्य सुरक्षा का महत्वपूर्ण आधार था (रॉय एट अल., 1912) ।

ब्रिटिश शासन के विस्तार के साथ भूमि संबंधों में परिवर्तन हुआ। भूमि को राजस्व के प्रमुख स्रोत के रूप में देखते हुए प्रशासनिक और कानूनी नियंत्रण बढ़ाया गया। इसके परिणामस्वरूप सामुदायिक भूमि अधिकार कमजोर हुए तथा लगान, ऋणग्रस्तता और भूमि संबंधी असुरक्षा में वृद्धि हुई। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव महिलाओं पर पड़ा, क्योंकि उनकी आजीविका और पारिवारिक जीवन कृषि एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थे (गुहा एट अल., 1963)। औपनिवेशिक वन नीतियों ने भी महिलाओं की स्थिति को प्रभावित किया। जंगलों पर राज्य नियंत्रण बढ़ने से जलावन, खाद्य सामग्री, चारा और अन्य वन उत्पादों तक उनकी पारंपरिक पहुँच सीमित हुई। आवश्यक वस्तुओं के संग्रह के लिए अधिक समय और श्रम की आवश्यकता होने लगी। परिणामस्वरूप महिलाओं के दैनिक कार्यभार में वृद्धि हुई।

खनन और औद्योगीकरण ने महिलाओं के लिए मजदूरी के नए अवसर प्रदान किए। अनेक महिलाएँ कृषि मजदूरी, खनन तथा अन्य श्रमप्रधान कार्यों से जुड़ीं। किंतु इन कार्यों में कम मजदूरी, कठिन परिस्थितियाँ, स्वास्थ्य संबंधी जोखिम और घरेलू जिम्मेदारियों का दोहरा बोझ मौजूद था। इसलिए महिलाओं की बढ़ती आर्थिक भागीदारी को पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता के रूप में नहीं देखा जा सकता (कुमार एट अल., 1993)। शिक्षा और आधुनिक चेतना का विकास औपनिवेशिक परिवर्तन का अपेक्षाकृत सकारात्मक पक्ष था। मिशनरी संस्थाओं और विद्यालयों के माध्यम से महिला शिक्षा के सीमित अवसर विकसित हुए। शिक्षा, प्रवासन और सामाजिक संपर्क ने महिलाओं के अनुभवों को व्यापक बनाया तथा अधिकारों और सामाजिक परिवर्तन के प्रति चेतना विकसित की (चक्रवर्ती एट अल., 2003) ।

9. निष्कर्ष व सुझाव

9.1 निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक काल (1765–1947) में झारखण्ड की महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति एक जटिल, विविधतापूर्ण और परिवर्तनशील प्रक्रिया से गुजरी। महिलाओं के अनुभव केवल औपनिवेशिक नीतियों से निर्धारित नहीं हुए, बल्कि जनजातीय पहचान, जाति, वर्ग, पारिवारिक संरचना तथा स्थानीय सांस्कृतिक परंपराओं ने भी उनकी स्थिति को प्रभावित किया। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आदिवासी और गैर-आदिवासी महिलाओं की सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण अंतर था। आदिवासी महिलाओं की कृषि, वन-आधारित गतिविधियों तथा सामुदायिक जीवन में सक्रिय भागीदारी थी और उन्हें कुछ क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। फिर भी भूमि, संपत्ति और औपचारिक निर्णय प्रक्रिया में उनकी स्थिति पूर्णतः समानतापूर्ण नहीं थी (रॉय एट अल., 1912; अग्रवाल एट अल., 1994)।

औपनिवेशिक भूमि एवं वन नीतियों ने महिलाओं की पारंपरिक आजीविका को गंभीर रूप से प्रभावित किया। जंगलों और प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य नियंत्रण बढ़ने से महिलाओं की जलावन, खाद्य सामग्री, चारा और अन्य वन उत्पादों तक पहुँच सीमित हुई। परिणामस्वरूप परिवार की आर्थिक असुरक्षा बढ़ी तथा महिलाओं के दैनिक श्रम का बोझ अधिक हो गया (गुहा एट अल., 1963)। खनन और औद्योगीकरण ने महिला श्रम के नए अवसर उत्पन्न किए, लेकिन इसके साथ कम मजदूरी, कठिन कार्य परिस्थितियाँ और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ भी सामने आईं। विस्थापन एवं प्रवासन ने महिलाओं की जिम्मेदारियों को और बढ़ाया। पुरुषों के रोजगार के लिए बाहर जाने पर महिलाओं को कृषि, घरेलू कार्य तथा बच्चों की देखभाल का अतिरिक्त भार उठाना पड़ा। मिशनरी संस्थाओं और आधुनिक विद्यालयों ने महिला शिक्षा तथा सामाजिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि महिला शिक्षा की पहुँच सीमित थी, फिर भी इसने महिलाओं के बीच नए विचारों और सामाजिक परिवर्तन की आधारभूमि तैयार की। महिलाओं ने जनजातीय आंदोलनों, सामुदायिक संघर्षों और स्वतंत्रता आंदोलन में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया। अतः औपनिवेशिक शासन ने झारखण्ड की महिलाओं के जीवन में अवसर, असुरक्षा और संरचनात्मक परिवर्तन- तीनों स्थितियाँ उत्पन्न कीं।

9.2. सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं-

1. स्थानीय महिला इतिहास पर अधिक शोध: जिला और स्थानीय समुदाय स्तर पर महिलाओं की भूमिका का विस्तृत अध्ययन किया जाना चाहिए।

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

2. मौखिक इतिहास का दस्तावेजीकरण: आदिवासी महिलाओं के लोकगीतों, लोककथाओं और सामुदायिक स्मृतियों को व्यवस्थित रूप से संकलित किया जाना आवश्यक है।

3. महिला श्रम का अध्ययन: कृषि, वनोपज, खनन और मजदूरी में महिलाओं के आर्थिक योगदान का अभिलेखीय एवं आर्थिक दृष्टि से अधिक शोध किया जाना चाहिए।

4. इतिहास लेखन में उचित स्थान: स्थानीय और जनजातीय इतिहास में महिलाओं को निष्क्रिय सामाजिक समूह के बजाय सक्रिय ऐतिहासिक सहभागी के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

5. लैंगिक दृष्टिकोण को अपनाना: भूमि, वन, औद्योगीकरण और विस्थापन के इतिहास का महिलाओं के अनुभवों के आधार पर पुनः अध्ययन किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल बी. *ए फील्ड ऑफ वन'स ओन: जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया.* कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस; 1994. पृ. 1–20, 35–68।
2. एक्का एन. *झारखण्ड की आदिवासी महिलाएँ: समाज और संस्कृति.* राँची: झारखण्ड प्रकाशन; 2018. पृ. 25–58।
3. एल्विन वी. *द एबोरिजिनल्स.* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 1943. पृ. 40–75।
4. चक्रवर्ती यू. *जेंडरिंग कास्ट: थ्रू ए फेमिनिस्ट लेंस.* कोलकाता: स्त्री प्रकाशन; 2003. पृ. 15–42।
5. दास एसके. *ट्राइबल लाइफ इन इंडिया.* नई दिल्ली: कॉसमो पब्लिकेशन्स; 1991. पृ. 70–105।
6. दुबे श्याम चरण. *इंडियन विलेज.* लंदन: रूटलेज एंड केगन पॉल; 1967. पृ. 82–110।
7. देसाई एआर. *सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म.* मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन; 1948. पृ. 110–145।
8. गुहा रामचंद्र. *द अनक्वाइट वुड्स: इकोलॉजिकल चेंज एंड पीज़ेंट रेजिस्टेंस इन द हिमालय.* दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 1989. पृ. 90–125।
9. गुहा सुमित. *एन एनवायरनमेंटल हिस्ट्री ऑफ इंडिया.* नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स; 1999. पृ. 55–88।
10. कुमार राधा. *द हिस्ट्री ऑफ डूइंग: एन इलस्ट्रेटेड अकाउंट ऑफ मूवमेंट्स फॉर विमेन्स राइट्स एंड फेमिनिज्म इन इंडिया, 1800–1990.* नई दिल्ली: काली फॉर विमेन; 1993. पृ. 30–62।
11. कुमार धर्मेन्द्र. *आदिवासी समाज और औपनिवेशिक शासन.* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1992. पृ. 45–78।
12. कुलकर्णी एआर. *भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास.* नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान; 1996. पृ. 120–155।
13. गुप्ता एसपी. *झारखण्ड का इतिहास.* राँची: बिहार जनजातीय कल्याण अनुसंधान संस्थान; 1985. पृ. 50–92।
14. महतो बीपी. *झारखण्ड में जनजातीय आंदोलन.* राँची: झारखण्ड सांस्कृतिक शोध संस्थान; 2001. पृ. 60–98।
15. मुखर्जी राधाकमल. *द इंडियन वर्किंग क्लास.* बंबई: हिंद किताब्स; 1938. पृ. 90–128।
16. मुंडा रामदयाल. *आदि धर्म: धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ.* राँची: जनजातीय अनुसंधान संस्थान; 2000. पृ. 35–70।
17. रॉय सरत चंद्र. *द मुंडाज एंड देयर कंट्री.* कलकत्ता: सिटी बुक सोसाइटी; 1912. पृ. 1–45, 180–220।
18. रॉय सरत चंद्र. *द ओराँस ऑफ छोटानागपुर.* राँची: क्राउन पब्लिकेशन्स; 1915. पृ. 55–100।
19. रॉय सरत चंद्र. *द ओराँस ऑफ छोटानागपुर: सोशल एंड कल्चरल लाइफ.* राँची: जनजातीय अध्ययन केंद्र; 1928. पृ. 120–165।
20. सिंह कुमार सुरेश. *ट्राइबल मूवमेंट्स इन इंडिया.* नई दिल्ली: मनोहर पब्लिकेशन्स; 1982. पृ. 85–120।
21. सिंह कुमार सुरेश. *बिरसा मुंडा एंड हिज मूवमेंट, 1874–1901.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 1985. पृ. 15–60, 140–185।
22. सिन्हा सुरजीत. *ट्राइबल पॉलिटिक्स एंड स्टेट सिस्टम इन इंडिया.* नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग; 1983. पृ. 50–85।
23. सेठी हरि मोहन. *भारत में महिला श्रम और सामाजिक परिवर्तन.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 1996. पृ. 75–110।
24. शर्मा बीडी. *अनहैप्पी इंडिया: ए क्रिटीक ऑफ ट्राइबल डेवलपमेंट.* नई दिल्ली: साहित्य प्रकाशन; 1994. पृ. 100–140।
25. वर्मा आरसी. *झारखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास.* राँची: प्रभात प्रकाशन; 2007. पृ. 40–85।
26. टोप्पो इग्नेसियस. *छोटानागपुर की जनजातियाँ और समाज.* राँची: जनजातीय शोध संस्थान; 2005. पृ. 65–105।
27. झारखण्ड जनजातीय कल्याण अनुसंधान संस्थान. *झारखण्ड की जनजातियाँ: समाज एवं संस्कृति.* राँची: जनजातीय कल्याण अनुसंधान संस्थान; 2008. पृ. 20–65।
28. भारत सरकार. *सेन्सस ऑफ इंडिया, 1901.* कलकत्ता: गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस; 1901. पृ. 120–160।
29. भारत सरकार. *सेन्सस ऑफ इंडिया, 1911.* कलकत्ता: गवर्नमेंट प्रेस; 1911. पृ. 150–195।
30. भारत सरकार. *सेन्सस ऑफ इंडिया, 1931.* दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन; 1931. पृ. 200–245।

Creative Commons License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) License. This license permits users to copy and redistribute the material in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and the source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted.

About the Author

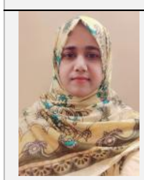

Rukhsana Praveen is a Research Scholar in the Department of History, Faculty of Social Science and Humanities, Radha Govind University, Ramgarh, Jharkhand, India. Her academic interests focus on historical studies, social and cultural developments, and interdisciplinary research in the humanities and social sciences.

© 2026 Rukhsana Praveen. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/